डॉ. उर्मिला पोरवाल 'विद्यासागर'
बैंग्लोर

हम स्वतंत्र हैं

कहते हैं—
हम स्वतंत्र हैं।

हाँ,
हमारे हाथों में बेड़ियाँ दिखाई नहीं देती,
लेकिन उँगलियाँ अब भी बँधी हैं—
एक स्क्रीन की अनंत स्क्रॉलिंग में।

हां
हमारी आवाज़ पर अब
कोई विदेशी पहरा नहीं है,
पर
हम सच बोलने से पहले
हवा का रुख जरूर देख लेते हैं।

हां
हमने साम्राज्य तो बदल दिए,
पर उपनिवेशवादिता
अब मन के भीतर बसती हैं—
विचार आयातित हैं,
संवेदनाएँ किराए की,
और पहचान
'ट्रेंड' के अनुसार बदलती रहती है।

हां
हम स्वतंत्र हैं,
पर निर्णय
परिस्थितियों के आधार पर लेने लगे हैं।
हम पढ़ते कम हैं, आजकल
प्रभावित ज्यादा होते हैं।

हां सच है,
हमारे पास
अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता है,
किन्तु असहमति का साहस
दिन–प्रतिदिन सिकुड़ता जा रहा है।

हां
हम प्रगति की ऊँची इमारतें बना रहे हैं,
पर भीतर का मनुष्य
धीरे–धीरे खंडहर होता जा रहा है।

रिश्ते
अब संवाद से नहीं,
नेटवर्क से जुड़ते हैं।
और टूटते हैं
एक 'ब्लॉक' या 'अनफॉलो' करने से।

ज्ञान
अब सूचना के महासागर में डूबा है,
और विवेक
बूँद–बूँद को तरस रहा है।

हां
एक तरफ हम चाँद पर पहुँच गए हैं,
और दूसरी तरफ पड़ोसी के आँसू
तक हमें दिखाई नहीं देते।

हां
हम आधुनिक हो रहे हैं,
कृत्रिम बुद्धिमत्ता गढ़ रहे हैं,
पर अपनी ही संवेदनाओं का
अंतिम संस्कार भी
चुपचाप साथ – साथ कर रहे हैं।

आज का सबसे बड़ा प्रश्न यह नहीं है कि—

भारत स्वतंत्र है या परतंत्र

प्रश्न यह है कि—
क्या हमारा मन स्वतंत्र है?
क्या हमारी सोच स्वतंत्र है?

यदि नहीं—
तो यह स्वतंत्रता
केवल संविधान के पन्नों पर लिखी हुई है,
जीवन के पन्नों पर नहीं।

और आज की सबसे गहरी विडंबना यही है—

जिस राष्ट्र ने पराधीनता की जंजीरें
बरसों पहले तोड़ दीं,
उसकी नई पीढ़ी
आज अदृश्य बंधनों को ही
स्वतंत्रता समझकर जी रही है।